International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 29-05-2025, Accepted: 28-06-2025, Published: 14-07-2025
Volume 11, Issue 3, 2025, Page No. 14-15

दलित साहित्य लेखन में गैर दलित साहित्यकारों का अवदान

डॉ. उपेन्द्र प्रसाद
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार, भारत

सारांश
दलित साहित्य आन्दोलन समकालीन हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत विभिन्न विमर्शों में से सबसे महत्वपूर्ण विमर्श है। सामान्य तौर पर यह मान्यता है कि जन्मना दलित समुदाय के रचनाकारों द्वारा रचित कथा, कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा, कविता आदि दलित साहित्य के अन्तर्गत माना जाता है। परन्तु साहित्य का चरित्र समावेशी होता है। उसका संबंध किसी भी समुदाय, वर्ग, जाति, धर्म, लिंग आदि से न होकर मानवीय संवेदना से होता है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ से ही प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, रघुवीर सहाय जैसे गैरदलित साहित्यकारों ने दलितों की कथा–व्यथा को केन्द्र में रखकर अनेक रचनाएँ की हैं। यह सभी रचनाएँ अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इस शोध आलेख के अन्तर्गत दलित साहित्य को गति प्रदान करने में गैरदलित साहित्यकारों के अवदान को रेखांकित किया गया है।

मूल शब्दः गैरदलित, अस्पृश्य, अभिव्यंजना, नायकत्व, स्वानुभूति, समतामूलक, मेहनतकश, सर्वहारा इत्यादि

समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श एक प्रमुख आन्दोलन का रूप ग्रहण कर चुका है। दलित विमर्श से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा के रूपांतरित किया है, अपने जीवन संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है। दलित विमर्श उनकी उसी अभिव्यक्ति का विमर्श है। ओम प्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं– ''दलित शब्द व्यापक अर्थ बोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियों और आदिवासी जयराम पेशा घोषित जातियाँ सभी इस दायरे में आती है। सभी वर्गों की स्त्रियाँ दलित है। बहुत कम श्रम मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करनेवाले श्रमिक, बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते हैं।''[1]

मुख्य भाग

आज दलित लेखन साहित्य अपने उत्कर्ष पर है, किंतु इसके पूर्व भी साहित्य में दलित समाज पर बहुत कुछ लिखा गया है। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि की जड़े बहुत गहरी है। हिन्दी के प्रथम कवि सिद्ध सरहपा के साहित्य में दलित चेतना का बीज मिलता है। इसके बाद जो धारा साहित्य में प्रवाहित हुए वह प्रतिक्रांति की धारा है। वर्ण–व्यवस्था के विरोध और सामाजिक परिवर्तन कि जो क्रांति बुद्ध ने की थी आदिकाल के सिद्ध कवि इसी क्रांति के वाहक थे नाथों ने भी दलित चेतना से सम्पन्न साहित्य की रचना की। निर्गुण संत कबीर, रैदास, नामदेव, ज्योतिबा फूले के बाद आधुनिक काल में निराला, प्रेमचन्द, राजेन्द्र यादव, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, धूमिल दुधनाथ सिंह, अखिलेश रामेश्वर उपाध्याय, चन्द्रमोहन प्रधान, अदमगोडवी, देवेन्द्र दीपक आदि ने दलित विषयक उपन्यास कहानियाँ और कविताएँ लिखी है। प्रेमचन्द की कहानियों, उपन्यासों में दलित शोषण के अनेकविध आयाम मिलते हैं। ठाकुर का कुआँ, सदगति कफन, दूध का दाम, घासवाली कहानियों में दलित समाज के कष्टों और पीड़ाओं के चित्रण में जिस संयम से काम लिया है उससे ये कहानियाँ सामाजिक अन्याय और शोषण के विरूद्ध एक शक्तिशाली जिहाद बन जाती है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में दलित अत्याचार विरोध के स्वर सुनाई देते हैं। उन्होंने अपने रंगभूमि उपन्यास में सूरदास को नायकत्व प्रदान करते हुए गांव के हित में पांडे पुर वालों को औद्योगिक दानव से लड़ाई लड़ने वाला दिखाया है। सूरदास गांधीवादी तरीके से अपना विरोध प्रकट करता है। प्रेमचन्द गांधी दर्शन से प्रेरित रहे हैं। अगर तत्कालीन राजनीति में गांधी का होना यथार्थ है तब फिर सूरदास जैसा चरित्र गढ़ा जाना कैसे यथार्थ विरोधी हो सकता है। उसी तरह अमृत लाल नागर रचित उपन्यास 'नाचयो बहुत गोपाल', चन्द्रमोहन प्रधान की 'जूठे भात का सच' और अखिलेश की कहानी 'ग्रहण', रामेश्वर उपाध्याय की 'दुखवा में बीतल रतिया' निश्चित रूप से एक गैर दलित साहित्यकार द्वारा दलित पृष्ठ भूमि पर लिखा गया है।

निराला, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, धूमिल, अदमगोंडवी, विरेन डंगवाल, लीलाधर जगुड़ी, बलदेव खटिक विष्णुखरे ने अपनी कविताओं में 'दलित समाज की भावनाओं को आवाज दी है। ये साहित्यकार दलित की पीड़ा, दमन और शोषण को महसूस कर द्रवित हुए है। इनके साहित्य में दलित समाज का चित्रण का मर्मस्पर्शी और मुखर रूप मिलता है।

हाल के वर्षों में नए और शक्तिशाली दलित साहित्यकारों का उदय हो रहा है जो अपनी अद्वितीय दृष्टिकोण के कारण कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक जीवनी से साहित्य क्षेत्र को बदल रहे हैं। इनमें प्रमुख है– ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसीराम, मोहनदास नैमिशराय, मलखन सिंह, जयप्रकाश करदम, कवल भारती, असंगघोष, सुशीला टाकभोरे, सूरजपाल चौहान, श्यौराज सिंह 'बेचैन', रजनी तिलक, अनीता भारती आदि।

आज गैर दलित साहित्यकारों और दलित साहित्यकारों के लेखन को लेकर एक गंभी विवाद छिड़ा हुआ है कि दलित साहित्य की रचना कौन कर सकता है। दलित विमर्श की उभार ने इस प्रश्न को और मजबूती से उठाया है। दलित साहित्यकारों का मानना है कि गैर दलित साहित्यकारों ने जो साहित्य लिखा है उसमें उन्होंने पात्रों का उपस्थापन किया है उनकी उपस्थिति नहीं है जबकि दलित साहित्यकार पात्र के रूप में स्वयं वहां उपस्थित हैं। दलित साहित्यकारों का मानना है कि गैर दलित साहित्यकारों ने जिन पात्रों की सर्जना की है वे उनकी सहानुभूति लेकर उभरे है। जबकि दलित साहित्यकारों द्वारा रचे गये पात्र भोगे हुए यथार्थ से है। कंवल भारती लिखते हैं– ''अनुभूति की प्रामाणिकता और स्वानुभूति जैसे शब्द मूलतः दलित साहित्य के शब्द है, जो दलितों के यथार्थवादी सृजन से उभरे है।''[2]

दलित साहित्यकारों का मानना है कि मुख्यधारा के साहित्यकारों का मानना है कि मुख्यधारा के साहित्यकार दलितों का संवेदनशील चित्रण नहीं कर पाते है। वे गैर दलित साहित्यकारों को दलित चेतना से संपन्न नहीं मानते हैं। दलित साहित्यकारों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही दलित साहित्य माने जाने के

कारणों की ओर संकेत करते हुए कंवल भारती लिखते हैं– ''सवाल नेतृत्व का भी है। यदि दलित जीवन भर गैर दलित लेखक के लेखन को दलित साहित्य मान लिया जायेगा तो नेतृत्व गैर दलित लेखकों के हाथों में जा सकता है और इस प्रकार दलित साहित्य लक्ष्य से भटक सकते हैं या भरमाया जा सकता है।''[3]

इस संदर्भ में प्रश्न उठेगा कि क्या गैर दलित साहित्यकार दलित साहित्य नहीं लिख सकता है। इस पर प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह कहते हैं – ''वैसे गैर–दलित दलित साहित्य लिखते हैं तो इस पर कोई रोकथाम तो नहीं की जा सकती बल्कि उसका स्वागत भी किया जाना चाहिए।'' मनोहर श्याम जोशी कहते हैं– स्वाभाविक है कि दलितों के बारे में दलित ही सबसे अच्छा लिख सकते हैं। लेकिन यह कहना कि कोई गैर दलित दलितों के बारे में कोई प्रामाणिक या भावप्रद रचना नहीं लिख सकता, लेखकीय सहानुभूति और कल्पनाशीलता का जबरदस्त अवमूल्यन करना है।'' जबकि दलित लेखकों के अनुसार वही दलित साहित्य है जो दलितों के द्वारा दलितों के लिए लिखा गया है। इस संदर्भ में मोहनदास नैमिशराय का कथन द्रष्टव्य है– ''दूर बैठकर कल्पना करना और इसी आधार पर दलितों की पीड़ा का वर्णन करना, दलित साहित्य की श्रेणी में नहीं आता, क्योंकि यह बिल्कुल वैसा ही होगा, जैसे दलित, शोषितों को दूर से फेककर रोटी दान करना। जबकि दलित वर्ग के लेखकों ने जो लिखा उनकी रचनाओं में अथाह पीड़ा रही है, आक्रोश ज्वार बार–बार उफनता रहा, इसलिए कि वह सामाजिक विषमता के भुक्त भोगी थे।''[4]

वर्तमान समय दलित विमर्श के उभार को है। दलित साहित्य का फलक विस्तृत हुआ है। दलित साहित्य उत्पीड़न की कोख स उपजा है। दलित विमर्श के उभार के पूर्व जिन गैर दलित साहित्यकारों ने दलित चेतना से संबंधित रचनाए की है, वे सभी संवेदनशील रहे है और उपेक्षित और वंचित वर्ग के प्रति सहानुभूति रखते है। इस संबंध में डॉ. तुलसीराम का चिंतन गंभीरता से विचारणीय है– ''दलित साहित्य वर्ण–व्यवस्था के विरोध में लिखा गया साहित्य है। अब इस तरह से चाहे जो भी लिखे। गैर दलित भी ऐसा साहित्य लिखता है तो वह भी दलित साहित्य का अभिन्न हिस्सा है।''

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य का मूल उद्देश्य मानवीय एवं समतामूलक समाज का निर्माण करना है। इसके केन्द्र में समाज का सबसे वंचित वर्ग मेहनतकश, सर्वहारा एवं असंख्य मानव जाति है जिसे सदियों से सामाजिक परंपरा धर्म आदि की आड़ में शारीरिक और मानसिक रूप से गुलाम बनाया गया है। इनके जीवन से जुड़ी सारी रचनाएँ दलित साहित्य है। चाहे वह गैर दलितों द्वारा ही न क्यों लिखी गई हो। आज गैर दलित और दलित रचनाकारों/विचारकों के बीच एक अंतः संबंध विकसित करते हुए दलित साहित्य को समझने का एक सुसंगत दृष्टिकोण करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ. 14
2. दलित साहित्य की अवधारणा, पृ. 75
3. दलित साहित्य की अवधारणा, पृ. 31
4. भारत में दलित लेखकों की संघर्ष यात्रा, पृ. 23